आचार्य शान्तिसागरका ऐतिहासिक समाधिमरण

प्राग्वृत्त

१८ अगस्त १९५५ का दिन था। श्रीसमन्तभद्र संस्कृत-विद्यालय आरम्भ हो चुका था। चा० च० आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके द्वारा १४ अगस्त ५५ को श्रीकुंथलगिरि सिद्धक्षेत्रपर ली गई 'सल्लेखना' के प्राप्त समाचारसे समस्त अध्यापकों तथा छात्रोंको एक छोटेसे वक्तव्यके साथ अवगत कराया। सबने मौन-पूर्वक खड़े-खड़े नौवार 'णमोकारमंत्र' का जाप्य किया और महाराजकी निर्विघ्न सल्लेखना (समाधिमरण)के लिये सश्रद्ध शुभकामनाएँ कीं।

विद्यालयकी पढ़ाई चालू ही हुई थी कि महासभाके आफिसमें शीघ्र ही आनेके लिये फोन आया। हम वहाँ पहुँचे। वहाँ स्थानीय समाजके ४-६ प्रतिष्ठत महानुभाव भी थे। सबको बताया गया कि 'पं० वर्धमानजी शास्त्री शोलापुरका आज तार आया है, जिसमें उन्होंने सूचित किया है कि आचार्य महाराजने १७ अगस्त ५५ को ३॥ बजे मध्याह्नमें 'यम-सल्लेखना' ले ली है। अर्थात् जलका भी त्याग कर दिया है—यदि बाधा हुई और आवश्यकता पड़ी तो उसे लेंगे।' यह वे बता ही रहे थे कि इतनेमें शोलापुरसे सेठ रावजी देवचंदका फोन आया। उसमें उन्होंने भी यही कहा। निश्चय हुआ कि सुबह और शाम प्रत्येक मन्दिरजीमें जप, ध्यान, शान्तिधारा, पूजा, पाठ आदि सत्कार्य किये जायें। दान, एकाशन आदि भी, जो कर सकें, करें। हमने महाराजके अन्तिम उपदेशोंको रिकार्डिङ्ग मशीन (ध्वनिग्राहकयंत्र) द्वारा रिकार्ड (ध्वनिग्रहण) कराने तथा फिल्म (महाराजकी समग्र क्रियाओंका छायाचित्र) लेनेका विचार रखा, जिसपर हम लोग कोई निश्चय नहीं कर सके और इस चिन्ताके साथ लौटे कि 'जो विभूति आज हमारे सामने है और जिसने हमारा असधारण उपकार किया है उसके कुछ दिन बाद दर्शन नहीं हो सकेंगे।'

१९ अगस्तको बड़ौत (मेरठ) में आचार्य श्री १०८ नमिसागरजी महाराजका, जो आचार्यश्रीके प्रमुख शिष्य थे, केशलोंच था। विद्यालयके संस्थापक ला० मुन्शीलालजी जैन कपड़ेवाले तथा हम वहाँ गये। वहाँ महाराज नमिसागरजी भी आचार्यश्रीके सल्लेखनाग्रहणसे सचिन्त थे। २० अगस्तको हम बड़ौतसे दिल्ली वापिस आगये।

२१ अगस्त रविवार १९५५ को आ० नमिसागरका पत्र लेकर श्री कुन्थलगिरि जानेका निश्चय हुआ। तदनुसार दूसरे ही दिन २२ अगस्तको देहरा-बम्बई एक्सप्रेससे १०-२० बजे रातको श्री कुंथलगिरिके लिये रवाना हुए। गाड़ी दिल्लीसे ठीक समयपर छूटी; किन्तु नई दिल्ली और होडलके बीच एक स्टेशनपर गाड़ी ७ घंटे पड़ी रही। मालूम करनेपर ज्ञात हुआ कि राष्ट्रपतिजीकी स्पेशल गाड़ी उधरसे दिल्ली आ रही है।

२३ अगस्तका दिन गाड़ीमें ही सफर करते हुए व्यतीत हुआ। कोटा, रतलाम, बड़ौदा, भंड़ौंच, अकलंकेश्वर, सूरत आदि स्टेशनोंपरसे गुजरते हुए २४ अगस्तको दिनमें १॥ बजे बम्बई पहुँचे। तुरन्त घोड़ा-

---

१. जैन प्रचारक, सल्लेखनांक, अगस्त १९५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाड़ी करके हीराबागकी धर्मशाला आये। वहाँ स्नान, देवदर्शन, पूजन और भोजन आदि दैनिक क्रियाओंसे निवृत्त हुए। वहाँ श्री १०८ मुनि नेमिसागरजीका चतुर्मास हो रहा था। उनके दर्शन किये। शामको उसी दिन कुंथलगिरि जानेके लिये स्टेशनपर आये। मद्रास एक्सप्रेससे सवार होकर ता० २५ अगस्तको प्रातः ७ बजे कुर्डुवाड़ी पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि एडसी-कुंथलगिरि जानेवाली गाड़ी डेढ़ घंटे पूर्व छूट चुकी है। अतः कुर्डुवाड़ीमें स्नान, देवदर्शन, पूजन आदि करके मोटर बस द्वारा वार्सी होते हुए उसी दिन मध्याह्नमें ३।२० पर श्रीकुंथलगिरि पहुँचे। कुंथलगिरिका सुन्दर पहाड़ २-३ मील पहलेसे दिखने लगता है। यहाँसे देशभूषण और कुलभूषणने घोर उपसर्ग सहनकर सिद्धपद प्राप्त किया था।

मोटरसे उतरते ही मालूम हुआ कि महाराज दर्शन दे रहे हैं और प्रतिदिन मध्याह्नमें ३ से ३।। बजे तक दर्शन देकर गुफामें चले जाते हैं। अतः सामानको वहीं छोड़ तीव्र वेगसे महाराजके दर्शनोंके लिये पहाड़-पर पहुँचे। उस दिन महाराजने ३-४५ बजे तक जनता को दर्शन दिये। महाराज सबको अपने दाहिने हाथ और पिछीको उठाकर आशीर्वाद दे रहे थे। उस समयका दृश्य बड़ा द्रावक एवं अनुपम था। अब मनमें यह अभिलाषा हुई कि महाराजके निकट पहुँचकर निकटसे दर्शन व वार्ता करें तथा महाराज नमिसागरजी-का लिखा पत्र उनके चरणोंमें अर्पित करें।

सुयोगसे पं० सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर सिवनीने हमें तत्क्षण देखकर निकट बुला लिया और सेठ रावजी पंढारकर सोलापुर तथा श्री १०५ लक्ष्मीसेन भट्टारक कोल्हापुरसे हमारा परिचय कराया एवं आचार्य महाराजके चरणोंमें पहुँचानेके लिए उनसे कहा। ये दोनों महानुभाव महाराजकी परिचर्यामें सदा रहने-वालोंमें प्रमुख थे। एक घंटे बाद पौने पाँच बजे माननीय भट्टारकजी हमें महाराजके पास गुफामें ले गये।

सौम्यमुद्रामें स्थित महाराजको त्रिवार नमोऽस्तु करते हुए निवेदन किया कि 'महाराज! आपके सल्लेखनाव्रत तथा परिचर्यामें दिल्लीकी ओरसे, जहाँ आपने सन् १९३० में ससंघ चतुर्मास किया था, महा-राज नमिसागरजीने हमें भेजा है। महाराज नमिसागरजीने आपके चरणोंमें एक पत्र भी दिया है।' आचार्य-श्रीने कहा—'**ठीक है, तुम अच्छे आये।**' और पत्रको पढ़नेके लिये इङ्गित किया। हमने १० मिनट तक पत्र पढ़कर सुनाया। महाराजने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। महाराजकी शान्त मुद्राके दर्शनकर प्रमुदित होते हुए गुफासे बाहर आये। बादमें पहाड़से नीचे आकर डेरा तलाश करते हुए दिल्लीके अनेक सज्जनोंसे भेंट हुई। उनसे मालूम हुआ कि वे उसी दिन वापिस जा रहे हैं। अतः हम उनके डेरेमें ठहर गये।

यहाँ उल्लेख योग्य है कि वर्षाका समय, स्थानकी असुविधा और खाद्य-सामग्रीका अभाव होते हुए भी भक्तजन प्रतिदिन आ रहे थे और सब कष्टोंको सह रहे थे।

२९ अगस्त तक हम महाराजके पादमूलमें रहे और भाषण, तत्त्वचर्चा, विचार-गोष्ठी आदि दैनिक कार्यक्रमोंमें शामिल होते रहे। तथा सल्लेखना-महोत्सवके प्रमुख संयोजक सेठ बालचन्द देवचन्दजी शहा सोलापुर—बम्बईके आग्रह एवं प्रेरणासे 'सल्लेखनाके महत्त्व' तथा 'आचार्यश्रीके आदर्श-मार्ग' जैसे सामयिक विषयोंपर भाषण भी देते रहे। स्थान और भोजनके कष्टने इच्छा न होते हुए भी कुंथलगिरि और आचार्य-श्रीका पादमूल हमें छोड़नेके लिए बाध्य किया और इस लिये दिल्ली लौट जानेका हमने दुखपूर्वक निश्चय किया। अतः महाराजके दर्शनकर और उनकी आज्ञा लेकर मोटर-बसपर आ गये।

उल्लेखनीय है कि हमें दिवाकरजीने प्रेरणा की थी कि शेडवाल (जि० बेलगांव)में आचार्य महाराजके बड़े भाई और १७ वर्ष पहले आचार्यश्रीसे दीक्षित, जिनकी ९४ वर्षकी अवस्था है, मुनि वर्धमानसागरजी तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्भोजबाहुबलीमें मुनि समन्तभद्रजी, जो वर्धमानसागरजीसे दीक्षित, अनेक गुरुकुलोंके संस्थापक एवं आजन्म ब्रह्मचारी, बी० ए०, न्यायतीर्थ हैं, विराजमान हैं, उनके दर्शन अवश्य करना और आचार्यश्रीके बारेमें उनसे विशेष जानकारी प्राप्त करना। अतएव २९ अगस्तको श्रीकुंथलगिरिसे चलकर हम मिरज होते हुए ३० अगस्तको शेडवाल पहुँचे। वहाँ सौम्यमुद्राङ्कित एवं तेजस्वितापूर्ण मुनि वर्धमानसागरजीके दर्शन और आचार्य महाराज के बारेमें उनसे विशेष जानकारी प्राप्तकर बड़ा आनन्द हुआ। आचार्य महाराजके सदुपदेशसे यहाँ निर्मापित-भव्य एवं मनोहर तीस चौबीसी विशेष आकर्षणकी वस्तु है। यहाँका श्री शान्तिसागर दि० जैन अनाथाश्रम भी उल्लेखनीय है।

शेडवालसे ३१ अगस्तको चलकर उसी दिन कुम्भोज-बाहुबली पहुँचे। मुनि समन्तभद्रजी महाराजके, जो अभीक्ष्णज्ञानोपयोगमें निरत रहते हैं, दर्शन किये और उनके साथ चर्चा-वार्ताकर अतीव प्रमुदित हुए। यहाँका गुरुकुल, समवशरणमन्दिर, स्वाध्यायमन्दिर, बाहुबली मन्दिर, सन्मतिमुद्रणालय आदि संस्थाएँ द्रष्टव्य हैं। इन सब संस्थाओंके संस्थापक एवं प्राण महाराज समन्तभद्र हैं। महाराज पहाड़पर श्री १००८ बाहुबलीकी २८ फुट उन्नत विशाल मूर्तिकी भी स्थापना कर रहे हैं। आप जैसा धर्मानुराग हमें अबतक अन्यत्र देखनेमें नहीं मिला। श्रमणसंस्कृतिके आप सच्चे और मूक प्रसारक एवं सेवक हैं।

यहाँसे श्रमणवेलगोल—जैनबिद्री ज्यादा दूर नहीं है। अतः वहाँकी विश्वविख्यात गोम्मटेश्वरकी मूर्तिकी वन्दनाका लोभ हम संवरण नहीं कर सके। श्री समन्तभद्र महाराजने भी हमें प्रेरणा की। अतएव कुम्भोज बाहुबलीसे १ सितम्बरको चलकर २ सितम्बरको ६॥ बजे शामको श्रमणवेलगोल पहुँचे। पहुँचते ही उसी दिन रातको तथा दूसरे दिन ३ सितम्बरको गोम्मटेश्वरकी उस महान् अद्वितीय, ५८ फुट उत्तुङ्ग, अद्भुत, सौम्य मूर्तिकी वन्दनाकर चित्त सातिशय आह्लादित हुआ। यह मूर्ति एक हजार वर्षसे गर्मी, बरसात और सर्दीकी चोटोंको सहन करती हुई विद्यमान है और आज भी अपने निर्माताकी उज्ज्वल कीर्तिको विश्व-विख्यात कर रही है। इतनी विशाल और उत्तुङ्ग भव्य मूर्ति विश्वमें अन्यत्र नहीं है। यह वीतराग मूर्ति दूरसे ही दर्शकको अपनी ओर खींच लेती है और अपनेमें उसे लीन कर लेती है।

कुंथलगिरिसे यहां वापिस हुए यात्रियोंसे ज्ञात हुआ कि महाराजकी स्थिति चिन्ताजनक है और २९ अगस्तसे १ सितम्बर तक जल नहीं लिया। इस समाचारसे मेरे मनमें महाराजके चरणोंमें पुनः और शीघ्र कुंथलगिरि जानेके लिए ऊथल-पुथल एवं बेचैनी पैदा हो गई। फलतः ३ सितम्बर को ही श्रमणबेलगोलसे मोटरसे हम कुंथलगिरिके लिए पुनः चल दिये और ४ सितम्बरको ९ बजे रात्रिमें मिरज आगये। आनेपर मालूम हुआ कि एडसी-कुंथलगिरि जाने वाली गाड़ी आधा घण्टा पूर्व चली गई है और अब दूसरे दिन ११-४५ बजे जावेगी। फलस्वरूप उस दिन हम वहीं मिरज स्टेशन पर रहे। प्रातः ५ सितम्बरको मिरज शहरमें श्रीजिनमन्दिरके दर्शनोंके लिए गये। वहाँ भी देवेन्द्रकीर्ति भट्टारकजीसे भेंट हो गई। आप बहुत सज्जन भद्र भद्र हैं। मिरजसे ११-४५ बजेकी गाड़ीसे रवाना होकर ६ सितम्बरको एडसी होते हुए कुंथलगिरि पहुँचे। यहाँ आते ही ज्ञात हुआ कि महाराजकी प्रकृति उत्तम है। २ सितम्बरसे ४ सितम्बर तक उन्होंने जल ग्रहण किया। कल ५ सितम्बरको जल नहीं लिया है।

उसके बाद फिर आचार्यश्रीने जल ग्रहण नहीं किया। आचार्यश्रीसे दो एक बार जल ग्रहण करनेके लिए प्रार्थना भी की गई, किन्तु आचार्यश्रीने दृढ़ताके साथ कहा कि **'जब शरीर आलम्बन लिए बिना खड़ा नहीं रह सकता तो हम पवित्र दिगम्बर चर्याको सदोष नहीं बनावेंगे।'** ७ सितम्बरको बम्बईसे रिकार्डिंग मशीनके आजानेसे ८ सितम्बरको महाराजसे अन्तिम उपदेशके लिए प्रार्थना की गई। महाराजने सबकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रार्थना स्वीकार कर अपना अन्तिम भाषण दिया, जो मराठीमें २२ मिनट तक हुआ और जिसे रिकार्ड करा लिया गया।

आचार्यश्रीने समाजका लगभग अर्ध-शताब्दी तक मार्गदर्शन किया, देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक पाद-विहार करके उसे जागृत किया और शतब्दियोंसे ज्योतिहीन हुए दि० मुनिधर्म-प्रदीपको प्रदीप्त किया। इस दुषमाकालमें उन्होंने अपने पवित्र एवं यशस्वी चारित्र, तप और त्यागको भी निरपवाद रखते हुए निर्ग्रन्थ-रूपको जैसा प्रस्तुत किया वैसा गत कई शताब्दियोंमें भी नहीं हुआ होगा। उनके इस उपकारको कृतज्ञ समाज चिरकाल तक स्मरण रखेगी।

हमें आचार्यश्रीके सल्लेखना-महोत्सवमें २५ अगस्तसे २९ अगस्त तक और ६ सितम्बरसे १९ सितम्बर तक उनके देहत्याग तथा भस्मोत्थानक्रिया तक १९ दिन श्री कुंथलगिरिमें रहनेका सौभाग्य मिला। एक महान् क्षपकके समाधिमरणोत्सवमें सम्मिलित होना आनन्दवर्धक ही नहीं, अपितु निर्मल परिणामोत्पादक एवं पुण्यवर्धक माना गया है। महाराजने ३५ दिन जितने दीर्घकाल तक सल्लेखनाव्रत धारणकर उसके अचिन्त्य महत्त्व और मार्गको प्रशस्त किया तथा जैन इतिहासमें अमर स्थान प्राप्त किया।

आचार्यश्रीकी नेत्रज्योति-मन्दता

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराजकी आँखोंकी ज्योति पिछले कई वर्षोंसे मन्द होने लगी थी और वह मन्दसे मन्दतर एवं मन्दतम होती गई। आचार्य महाराज नश्वर शरीरके प्रति परम निस्पृही और विवेकवान् होते हुए भी इस ओरसे कभी उदासीन नहीं रहे और न शरीरकी उपयोगिताके तत्त्वको वे कभी भूले। '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**'—शरीर धर्मका प्रथम साधन है, इसे उन्होंने सदा ध्यानमें रखा और आंखोंकी ज्योति-मन्दताको दूर करनेके लिए भक्तजनोंद्वारा किये गये उपचार-प्रयत्नोंको सदैव अपनाया। महाराज स्वयं कहा करते थे कि '**भाई! आंखोंकी ज्योति संयम पालन में सहायक है और इस लिए हमें उसका ध्यान रखना आवश्यक है परन्तु यदि वह हमें जवाब देदे तो हमें भी उसे जवाब देना पड़ेगा।**' यथार्थमें आत्माके अमरत्वमें आस्था रखने वाले मुमुक्षु साधुका यही विवेक होता है। अत एव आचार्यश्रीने समय-समय पर उचित और मार्गाविरोधी उपचारोंको अपनाया तथा पर्याप्त औषधियोंका प्रयोग किया। किन्तु आंखोंकी ज्योतिमें अन्तर नहीं पड़ा, प्रत्युत वह मन्द ही होती गई। धार्मिक भक्तजनों द्वारा सुयोग्य डाक्टरों के लिए भी महाराजकी आँखें दिखाई गईं। परन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली।

समाधिमरण-धारणका निश्चय

ऐसी स्थितिमें आचार्यश्रीके सामने दो ही मार्ग थे, जिनमेंसे उन्हें एक मार्गको चुनना था। वे मार्ग थे—शरीररक्षा या आत्मरक्षा। दोनोंकी रक्षा अब सम्भव नहीं थी। जबतक दोनोंकी रक्षा सम्भव थी तबतक उन्होंने दोनोंका ध्यान रखा। उन्होंने अन्तर्दृष्टिसे देखा कि 'अब मुझे एककी रक्षाका मोह छोड़ना पड़ेगा। शरीर ८४ वर्षका हो चुका, वह जाने वाला है, नाशशील है, अब वह अधिक दिन नहीं टिक सकेगा। एक-न-एक दिन उससे मोह अवश्य छोड़ना पड़ेगा। इन्द्रियाँ जवाब दे रही हैं। आंखोंने जवाब दे ही दिया है। विना आंखोंकी ज्योतिके यह सिद्धसम आत्मा पराश्रित हो जायेगा। ईर्यासमिति और एषणासमिति नहीं पल सकतीं। क्या इन आत्मगुणोंको नाशकर अवश्य जाने-वाले जीर्ण-शीर्ण शरीरकी रक्षाके लिए मैं अन्न-पान ग्रहण करता रहूं? क्या आत्मा और शरीरके भेदको समझनेवाले तथा आत्माके अमरत्वमें आस्था रखने वाले साधुके लिए यह उचित है? जिन ईर्यासमिति (जीवदया), एषणासमिति (भोजनशुद्धि) आदि आत्ममूलगुणोंके विकास, वृद्धि एवं रक्षाके लिए अनशनादि तप किये, उपसर्ग सहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किये और घोर परीषह सहे, क्या उनका नाश होने दूँ? नश्वर शरीर नष्ट होता है तो हो, जीवनभर पालित-पोषित आत्मगुणोंको नाश नहीं होने दूंगा। अतः शरीरसे मोह छोड़कर आत्माकी रक्षा करूँगा; क्योंकि शरीररक्षाकी अपेक्षा आत्मरक्षा अधिक लाभदायक और श्रेयान् है। मैं सिद्धसम हूँ और इसलिये निर्विकल्पक समाधि द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर शुद्ध-बुद्ध-सिद्ध बनूँगा।' यह विचारकर आचार्य महाराजने सल्लेखनाव्रत धारण करनेका निश्चय किया और भगवान् श्री १००८ देशभूषण-कुलभूषणके पावन सिद्धिस्थान श्री कुंथलगिरिपर पहुँचकर अपने उस सुविचारित एवं विवेकपूर्ण निश्चयको क्रियात्मक रूप दिया। अर्थात् १४ अगस्त १९५५ रविवारको बादामका पानी लेकर उसी दिन समस्त प्रकारके आहार-पानीका आमरण त्याग-कर दिया। १७ अगस्त तक उनका यह त्याग नियम-सल्लेखनाके रूपमें रहा और उसके बाद उसे उन्होंने यमसल्लेखनाके रूपमें ले लिया। इतना विचार रखा कि बाधा होनेपर यदि कभी आवश्यकता पड़ी तो जल ले लूँगा।

समाधिमरण क्यों और उसकी क्या आवश्यकता ?

विक्रमकी छठी शताब्दीके विद्वान् आचार्य पूज्यपाद-देवनन्दि सल्लेखनाका महत्त्व और आवश्यकता बतलाते हुए लिखते हैं।

> 'मरणस्यानिष्टत्वाद्यथा वणिजो विविधपण्यदानादानसञ्चयपरस्य स्वगृहविनाशोऽनिष्टः। तद्विनाशकारणे च कुतश्चिदुपस्थिते यशाशक्ति परिहरति, दुःपरिहारे च पण्यविनाशो यथा न भवति तथा यतते एवं गृहस्थोऽपि व्रतशीलपण्यसञ्चये प्रवर्तमानस्तदाश्रयस्य न पातमभिवाञ्छति तदुपप्लवकारणे चोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परिहरति। दुःपरिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतते इति।'—स० सि०, अ० ७ सू० २२।

अर्थात् मरण किसीको इष्ट नहीं है। जिस प्रकार अनेक तरहके जवाहरातोंका लेन-देन करनेवाले व्यापारीको अपने घरका नाश इष्ट नहीं है। यदि कदाचित् उसके नाशका कोई (अग्नि, बाढ़, विप्लव आदि) कारण उपस्थित होजाय तो वह उसके परिहारका यथाशक्ति उपाय करता है। और यदि परिहारका उपाय सम्भव नहीं होता तो घरमें रखे हुए जवाहरातोंकी जैसे बने वैसे रक्षा करनेका यत्न करता है—अपने बहुमूल्य जवाहरातको नष्ट नहीं होने देता है उसीप्रकार जीवनभर व्रत-शीलरूप जवाहरातका सञ्चय करने वाला श्रावक अथवा साधु भी उसके आधारभूत अपने शरीरका नाश नहीं चाहता—उसकी सदा रक्षा करता है। और शरीरके नाशकारणों—रोग, उपसर्ग आदिके उपस्थित होनेपर उनका पूर्ण प्रयत्नसे परिहार करता है तथा असाध्य रोग, अशक्य उपसर्ग आदि के होनेपर जब देखता है कि शरीरका रक्षण अब सम्भव नहीं है तो आत्मगुणोंका नाश न हो वैसा प्रयत्न करता है। अर्थात् शरीररक्षाकी अपेक्षा वह आत्मरक्षाको सर्वोपरि मानता है।

इसी बातको पं० आशाधरजी भी कहते हैं—

> कायः स्वस्थोऽनुवर्त्यः स्यात् प्रतिकार्यश्च रोगितः।
> उपकारं विपर्यस्यंस्त्याज्यः सद्भिः खलो यथा॥
> देहादिवैकृतैः सम्यक्निमित्तैस्तु सुनिश्चिते।
> मृत्यावाराधनामग्नमतेर्दूरे न तत्पदम्॥

'स्वस्थ शरीर, पथ्य आहार और विहार द्वारा पोषण करने योग्य है। और रोगी शरीर योग्य औषधियों द्वारा उपचारके योग्य है। परन्तु योग्य आहार-विहार और औषधोपचार करते हुए भी शरीरपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका कोई असर न हो, प्रत्युत व्याधिकी वृद्धि ही हो, तो ऐसी स्थितिमें उस शरीरको दुष्टके समान छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। अर्थात् समाधिमरण लेकर आत्मगुणोंकी रक्षा करनी चाहिये।'

'शीघ्र मरण सूचक शरीरादिके विकारोंद्वारा और ज्योतिषशास्त्र, एवं शकुनविद्या आदि निमित्तोंद्वारा मृत्युको सन्निकट जानकर समाधिमरणमें लीन होना बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है। उन्हें निर्वाणका प्राप्त होना दूर नहीं रहता।'

इन उद्धरणोंसे सल्लेखनाका महत्व और आवश्यकता समझमें आ जाती है। एक बात और है वह यह कि कोई व्यक्ति रोते-विलपते नहीं मरना चाहता। यह तभी सम्भव है जब मृत्युका अकषायभावसे सामना करे। नश्वर शरीरसे मोह त्यागे। पिता, पुत्रादि बाह्य पदार्थोंसे राग-द्वेष दूर करे। आनन्द और ज्ञानपूर्ण आत्माके निजत्वमें विश्वास करे। इतना विवेक जागृत होनेपर मुमुक्षु श्रावक अथवा साधु सल्लेखनामरण, समाधिमरण या पंडितमरण या वीरमरण पूर्वक शरीर त्याग करता है। समाधिमरणपूर्वक शरीरत्याग करनेपर विशेष जोर देते हुए कहा है :--

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडम्बनात्।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना॥
तप्तस्य तपसश्चापि, पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना॥

'जो फल बड़े-बड़े व्रती पुरुषोंको कायक्लेश आदि तप, अहिंसादि व्रत धारण करनेपर प्राप्त होता है वह फल अन्त समयमें सावधानी पूर्वक किये हुए समाधिमरणसे जीवोंको सहजमें ही प्राप्त हो जाता है। अर्थात् जो आत्मविशुद्धि अनेक प्रकारके तपादिसे होती है वह अन्त समयमें समाधिपूर्वक शरीर त्यागनेपर प्राप्त हो जाती है।'

'बहुत काल तक किये गये उग्र तपोंका, पाले हुए व्रतोंका और निरन्तर अभ्यास किये हुए शास्त्र-ज्ञानका एक मात्र फल शान्तिपूर्वक आत्मानुभव करते हुए समाधिमरण करना है। इसके बिना उनका कोई फल प्राप्त नहीं होता—केवल शरीरको सुखाना या ख्यातिलाभ करना है।'

इससे स्पष्ट है कि सल्लेखनाका कितना महत्त्व है। जैन लेखकोंने इसपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। **'भगवती आराधना'** इसी विषयका एक प्राचीन ग्रन्थ है, जो प्राकृत भाषामें लिखा गया है और जिसका रचनाकाल डेढ़-दो हजार वर्षसे ऊपर है। इसी प्रकार **'मृत्युमहोत्सव'** नामका संस्कृत भाषामें निबद्ध ग्रंथ है, जो बहुत ही विशद और सुन्दर है। आचार्य समन्तभद्रने लिखा है—

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥

'जिसका कुछ उपाय शक्य न हो, ऐसे किसी भयङ्कर सिंह आदि द्वारा खाये जाने आदिके उपसर्ग आ जानेपर, जिसमें शुद्ध भोजन-सामग्री न मिल सके, ऐसे दुष्कालके पड़नेपर, जिसमें धार्मिक व शारीरिक क्रियाएँ यथोचित रीतिसे न पल सकें, ऐसे बुढ़ापेके आ जानेपर तथा किसी असाध्य रोगके हो जानेपर धर्मकी रक्षाके लिये शरीरके त्याग करनेको सल्लेखना (समाधिमरण--साम्यभावपूर्वक शरीरका त्याग करना) कहा गया है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी बातको एक दूसरी जगह भी इस प्रकार बतलाया गया है :—

नावश्यं नाशिने हिंस्यो धर्मो देहाय कामदः ।
देहो नष्टः पुनर्लभ्यो धर्मस्त्वत्यन्तदुर्लभः ॥

'नियमसे नाश होनेवाले शरीरके लिये अभीष्ट फलदायी धर्मका नाश नहीं करना चाहिये; क्योंकि शरीरके नाश हो जानेपर तो दूसरा शरीर पुनः मिल सकता है । परन्तु नष्ट धर्मका पुनः मिलना दुर्लभ है ।'

सल्लेखना धारण करनेवाले जीवका किसी वस्तुके प्रति राग अथवा द्वेष नहीं होता । उसकी एक ही भावना होती है और वह है विदेहमुक्ति । समन्तभद्रस्वामीने लिखा है—

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् ।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम् ॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥

'क्षपक इष्ट वस्तुसे राग, अनिष्ट वस्तुसे द्वेष, स्त्री-पुत्रादिसे ममत्व और धनादिसे स्वामीपनेकी बुद्धिको छोड़कर पवित्र मन होता हुआ अपने परिवारके लोगों तथा पुरा-पड़ोसी जनोंसे जीवनमें हुए अपराधोंको क्षमा करावे और स्वयं भी उन्हें प्रियवचन बोलकर क्षमा करे और इस तरह अपने चित्तको निष्कषाय बनावे ।'

'इसके पश्चात् वह जीवनमें किये, कराये और अनुमोदना किये समस्त हिंसादि पापोंकी निश्छल भावसे आलोचना (खेद-प्रकाशन) करे तथा मृत्युपर्यन्त समस्त महाव्रतों (हिंसादि पाँच पापोंके त्याग) को धारण करे ।

'इसके साथ ही शोक, भय, खेद, ग्लानि (घृणा), कलुषता और आकुलताको भी छोड़ दे तथा बल एवं उत्साहको प्रकट करके अमृतोपम शास्त्रवचनोंसे मनको प्रसन्न रखे ।'

'इसके बाद सल्लेखनाधारी सल्लेखनामें सर्वप्रथम आहार (भक्ष्य पदार्थों) का त्याग करे और दूध, छाछ आदि पेय पदार्थोंका अभ्यास करे । इसके अनन्तर उसे भी छोड़कर कांजी या गर्म जल पीनेका अभ्यास करे ।'

'बादमें उनको भी छोड़कर शक्तिपूर्वक उपवास करे और इस तरह उपवास करते एवं पंचपरमेष्ठीका ध्यान करते हुए पूर्ण जागृत एवं सावधानीसे शरीरका त्याग करे ।

इस विधिसे साधक अपने आनन्द-ज्ञान-घन आत्माका साधन करता है और भावी पर्यायको वर्तमान जीर्ण-शीर्ण नश्वर पर्यायसे भी ज्यादा सुखी, शान्त, निर्विकार, नित्य-शाश्वत एवं उच्च बनानेका सफल पुरुषार्थ करता है । नश्वरसे यदि अनश्वरका लाभ हो, तो उसे कौन विवेकी छोड़नेको तैयार होगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्लेखनाधारी उन पाँच दोषोंसे भी अपनेको बचाता है जो उसकी पवित्र सल्लेखनाको कलङ्कित करते हैं। वे पाँच दोष निम्न प्रकार हैं :—

जीवित-मरणाऽऽशंसे भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः।
सल्लेखनाऽतिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥

'सल्लेखना धारण करनेके बाद जीवित बने रहनेकी आकांक्षा करना, जल्दी मरनेकी आकांक्षा करना, भयभीत होना, स्नेहियोंका स्मरण करना और अगली पर्यायके इन्द्रियसुखोंकी इच्छा करना ये पाँच बातें सल्लेखनाको दूषित करनेवाली कही गई हैं।'

उत्तम समाधिमरणका फल

स्वामी समन्तभद्रने लिखा है कि—

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिवति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः॥

'उत्तम समाधिमरणको करनेवाला धर्मरूपी अमृतको पान करनेके कारण समस्त दुःखोंसे रहित होता हुआ निःश्रेयस और अभ्युदयके अपरिमित सुखोंको प्राप्त करता है।'

क्षपककी सल्लेखनामें सहायक और उनका महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य

इस तरह ऊपरके विवेचनसे सल्लेखनाका महत्त्व स्पष्ट है और इसलिये आराधक उसे बड़े आदर, प्रेम तथा श्रद्धाके साथ धारण करता है और उत्तरोत्तर पूर्ण सावधानीके साथ आत्म-साधनामें तत्पर रहता है। उसके इस पुण्यकार्यमें, जिसे एक '**महान् यज्ञ**' कहा गया है, पूर्ण सफलता मिले और अपने पवित्र पथसे विचलित न होने पाये, अनुभवी मुनि (निर्यापक) सम्पूर्ण शक्ति एवं आदरके साथ सहायता करते हैं और आराधकको समाधिमरणमें सुस्थिर रखते हैं। वे उसे सदैव तत्त्वज्ञानपूर्ण मधुर उपदेशों द्वारा शरीर और संसारकीअसारता एवं नश्वरता बतलाते हैं, जिससे वह उनमें मोहित न होवे।[1]

समाधिमरणकी श्रेष्ठता

आचार्य **शिवार्य**ने '**भगवती आराधना**' में सतरह प्रकारके मरणोंका उल्लेख करके पाँच तरहके[2] मरणोंका वर्णन करते हुए तीन मरणोंको उत्तम बतलाया है। लिखा है कि—

पंडिदपंडिदमरणं च पंडिदं बालपंडिदं चेव।
एदाणि तिण्णि मरणाणि जिणा णिच्चं पसंसंति॥२७॥

'पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण ये तीन मरण सदा प्रशंसायोग्य हैं।'

---

१. भ० आ० गा० ६५०-६७६।

२. पंडिदपंडिदमरणं पंडिदयं बालपंडिदं चेव।
बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च॥
'पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण, बालपण्डितमरण, बालमरण और बालबालमरण ये पाँच मरण हैं।
भ० आ० गा० २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे लिखा है :—

पंडिदपंडिदमरणे खीणकसाया मरंति केवलिणो ।
विरदाविरदा जीवा मरंति तदिएण मरणेण ॥२८॥
पाओपगमणमरणं भत्तप्पण्णा य इंगिणी चेव ।
तिविहं पंडियमरणं साहुस्स जहुत्तचरियस्स ॥२९॥
अविरदसम्मादिट्ठी मरंति बालमरणे चउत्थम्मि ।
मिच्छादिट्ठी य पुणो पंचमए बालबालम्मि ॥३०॥

अर्थात् चउदहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग-केवली भगवान्के निर्वाण-गमनको पण्डितपण्डितमरण, देश-व्रती श्रावकके मरणको बालपण्डितमरण, आचारांगशास्त्रानुसार चारित्रके धारक साधु-मुनियोंके मरणको पण्डितमरण, अविरतसम्यग्दृष्टिके मरणको बालमरण और मिथ्यादृष्टिके मरणको बालबालमरण कहा गया है। भक्तप्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन ये तीन पण्डितमरणके भेद हैं। इन्हीं तीन भेदोंका ऊपर संक्षेपमें वर्णन किया गया है।

आचार्य शान्तिसागर द्वारा इंगिनीमरण संन्यासका ग्रहण

आचार्य शान्तिसागरजीने समाधिमरणके इस महत्त्वको अवगत कर उपर्युक्त पण्डितमरणके दूसरे भेद इङ्गिनीमरण व्रतको ग्रहण किया। यद्यपि महाराज ५ वर्षसे पडितमरणके पहले भेद भक्तप्रत्याख्यानके अन्तर्गत सविचारभक्तप्रत्याख्यानका, जिसकी उत्कृष्ट अवधि १२ वर्ष है, अभ्यास कर रहे थे। किन्तु शरीरकी जर्जरता व नेत्रज्योतिकी अत्यन्त मन्दतासे जब उन्हें अपना आयुकाल निकट जान पड़ा तो उन्होंने उसे इङ्गिनीमरणके रूपमें परिवर्तित कर दिया, जिसे उन्होंने ३५ दिन तक धारण किया। महाराजने स्वयं दिनांक १७-८-५५ को मध्याह्नमें २॥ बजे सेठ बालचन्द्र देवचन्द्रजी शहा, सेठ रावजी देवचन्द्रजी निम्बरगीकर, संघपति सेठ गेंदनमलजी, सेठ चन्दूलालजी ज्योतिचन्द्रजी, श्री बण्डोवा रत्तोवा, श्री बाबूराव मारले, सेठ गुलाबचन्द्र सखाराम और रावजी बापूचन्दजी पंढारकरको आदेश करते हुए कहा था कि **'हम इङ्गिनीमरण संन्यास ले रहे हैं, उसमें आप लोग हमारी सेवा न करें और न किसीसे करायें।'** महाराजने यह भी कहा था कि **'पंचम काल होनेसे हमारा संहनन प्रायोपगमन (पण्डितमरणके तीसरे भेद) को लेनेके योग्य नहीं है, नहीं तो उसे धारण करते।'** यद्यपि किन्हीं आचार्योंके मतानुसार इङ्गिनीमरण संन्यास भी आदिके तीन संहननके धारक ही पूर्ण रूपसे धारण कर सकते हैं तथापि आचार्य महाराजने आदिके तीन संहननोंके अभावमें भी इसे धारण किया और ३५ दिन तक उसका निर्वाह किया, जिसका अवलोकन उनके सल्लेखना-महोत्सवमें उपस्थित सहस्रों व्यक्तियोंने किया, वह **'अचिन्त्यमीहितं महात्मनाम्'** महात्माओंकी चेष्टाएँ अचिन्त्य होती हैं, के अनुसार विचारके परे है।

समाधिमरणमें आचार्यश्रीके ३५ दिन

समाधिमरणके ३५ दिवसोंमें आचार्यश्रीकी जैसी प्रकृति, चेष्टा एवं चर्या रही उससे आचार्य महाराजके धैर्य, विवेक, जागृति आदिकी जानकारी प्राप्त होती है। १९ दिन तो हम स्वयं उनके पादमूलमें कुंथलगिरि रहे और प्रतिदिन नियमित दैनंदिनी (डायरी) लिखते रहे तथा शेष १६ दिवसोंकी उनकी चर्यादिको अन्य सूत्रोंसे ज्ञात किया।

१८ **सितम्बर** ५५, **रविवारको**—प्रातः ६-४५ बजे श्री लक्ष्मीसेनजी भट्टारकने अभिषेकजल ले जाकर कहा—'महाराज! अभिषेकजल है।' महाराजने उत्तर दिया 'हूँ' और उसे उत्तमांगमें लगा लिया। इसके ५ मिनट बाद ही ६-५० बजे उन्होंने शरीर त्याग दिया। शरीरत्यागके समय महाराज पूर्णतः जागृत और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावधान रहे। अन्तिम समयकी उनके शरीरकी शास्त्रानुसार विधि करके उसे पद्मासन रूपमें चौकीपर विराजमान किया गया और प्रतिदिनकी तरह मंचपर ले जाकर जनताके लिए उनके दर्शन कराये। २ घंटे तक दशभक्ति आदिका पाठ हुआ। इसके बाद एक सुसज्जित पालकीमें महाराजके पौद्गलिक शरीरको विराजमान करके उस स्थानपर पहाड़के नीचे ले गये, जहाँ दाह-संस्कार किया जाना था। पहाड़पर ही मान-स्तम्भके निकटके मैदानमें बड़े सम्मानके साथ डेढ़ बजे प्रभावपूर्ण दाह-संस्कार हुआ। लगभग ३० मन चन्दन, ३ बोरे कपूरकी टिकिया तथा खुला कपूर, हजारों कच्चे नारियल व हजारों गोले चितामें डाले गये। दाहसंस्कार महाराजके भतीजे, रावजी देवचन्द, माणिकचन्द वीरचन्द आदि प्रमुख लोगोंने किया। आगने धू-धूकर महाराजके शरीरको जला दिया। **'ओं सिद्धाय नमः'** प्रातः ६-५० से १।। बजे तक जनताने बोला। इसी समय महाराजके आत्माके प्रति पं० वर्द्धमानजी, हमने, पं० तनसुखलालजी काला आदिने श्रद्धाञ्जलि-भाषण दिये। दाह-संस्कारके समय सर्पराजके आनेकी बात सुनी गई। ज्योतिषशास्त्रानुसार महाराजका शरीरत्याग अच्छे मुहूर्त, योग और अच्छे दिन हुआ। रातको अनेक लोग दाहस्थानपर बैठे-खड़े रहे।

१९ सितम्बर ५५, को भस्मीके लिए हम ५ बजे प्रातः दाहस्थानपर पहुँचे और देखा कि भस्मीके विशाल ढेरको भक्तजनोंने समाप्त कर दिया और अब बीचमें आग मात्र रह गई।

भक्तजनोंकी उपस्थिति

इस प्रकार यह महाराजका समाधिमरण ३५ दिवस तक चला, जो वस्तुतः ऐतिहासिक है। इस अवसरपर निम्न व्रतीजन विद्यमान रहे :—

(१) मुनि श्री पिहितास्रव, (२) ऐलक सुबल, (३) ऐ० यशोधर, (४) क्षु० विमलसागर, (५) क्षु० सूरिसिंह, (६) क्षु० सुमतिसागर, (७) क्षु० महाबल, (८) क्षु० अतिबल, (९) क्षु० आदिसागर, (१०) क्षु० जयसेन, (११) क्षु० विजयसेन, (१२) क्षु० पार्श्वकीर्ति, (१३) क्षु० ऋषभकीर्ति, (१४) क्षु० सिद्धसागर, (१५) भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन, (१६) भट्टारक श्री जिनसेन, (१७) भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति (प्रारम्भमें रहे), (१८) क्षुल्लिका पार्श्वमती, (१९) क्षु० अजितमति, (२०) क्षु० विशालमती, (२१) क्षु० अनन्तमती (२२) क्षु० जिनमती, (२३) क्षु० वीरमती, ब्र० जीवराज, ब्र० दीपचन्द, ब्र० चान्दमल, ब्र० सूरजमल, ब्र० श्रीलाल आदि। समाजके अनेक प्रतिष्ठित श्रीमान् तथा विद्वान् भी वहाँ उपस्थित रहे। ३५ दिवसोंमें लगभग ५० हजार जनता पहुँची। इतने जन-समूहके होते हुए भी कोई विशेष घटना नहीं हुई। ३५ दिन जितना बड़ा मेला न सुना और न देखा। वह महाराजके जीवनव्यापी तप और आत्मत्यागका प्रभाव था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org